

Chapter बीस

वृन्दावन में वर्षा ऋतु तथा शरद् ऋतु

श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन को विस्तार देने के लिए इस अध्याय में श्री शुकदेव गोस्वामी शरद् तथा वर्षा ऋतुओं में वृन्दावन की शोभा का वर्णन करते हैं। ऐसा करते समय वे विविध रूपकों के द्वारा मनोहारी उपदेश देते हैं।

श्रीशुक उवाच

तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ।

गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तयोः—उन दोनों (कृष्ण तथा बलराम) का; तत्—वह; अद्भुतम्—अद्भुत; कर्म—कार्य; दाव-अग्नेः—दावाग्नि से; मोक्षम्—उद्धार; आत्मनः—अपना; गोपाः—ग्वालबाल; स्त्रीभ्यः—स्त्रियों से; समाचख्युः—विस्तार से बतलाया; प्रलम्ब-वधम्—प्रलम्बासुर का मारा जाना; एव—निस्सन्देह; च—भी ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : तब ग्वालबालों ने वृन्दावन की स्त्रियों से दावाग्नि से बचाए जाने और प्रलम्बासुर का बध किये जाने के कृष्ण तथा बलराम के अद्भुत कार्यों का विस्तार से वर्णन किया ।

गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ।
मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥ २ ॥

शब्दार्थ

गोप-वृद्धाः—बूढ़े ग्वाले; च—तथा; गोप्यः—गोपियाँ; च—भी; तत्—से; उपाकर्ण्य—सुनकर; विस्मिताः—आश्चर्यचकित;
मेनिरे—विचार किया; देव-प्रवरौ—दो प्रतिष्ठित देवता; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम दोनों भाई; व्रजम्—वृन्दावन में;
गतौ—चोमे.

यह वर्णन सुनकर बड़े-बूढ़े गोप तथा स्त्रियाँ आश्चर्यचकित हो गये और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कृष्ण तथा बलराम अवश्य ही महान् देवता हैं, जो वृन्दावन में प्रकट हुए हैं।

ततः प्रावर्तत प्रावृट्सर्वसत्त्वसमुद्भवा ।
विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; प्रावर्तत—शुरू हुई; प्रावृट्—वर्षा ऋतु; सर्व-सत्त्व—सारे जीवों की; समुद्भवा—उत्पत्ति की स्रोत;
विद्योतमान—बिजली से चमकता; परिधिः—क्षितिज; विस्फूर्जित—(गरज से) विक्षुब्ध; नभः—तला—आकाश।

इसके बाद वर्षा ऋतु का शुभारम्भ हुआ जो समस्त जीवों को जीवनदान देती है। आकाश गर्जना से गूँजने लगा और क्षितिज पर बिजली चमकने लगी।

सान्द्रनीलाम्बुदैव्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ।
अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मोव सगुणं बभौ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

सान्द्र—घने; नील—नीले; अम्बुदैः—बादलों से; व्योम—आकाश; स-विद्युत्—बिजली सहित; स्तनयित्नुभिः—तथा गरज के साथ; अस्पष्ट—धूमिल; ज्योतिः—प्रकाश; आच्छन्नम्—ढका हुआ; ब्रह्म—आत्मा; इव—मानो; स-गुणम्—भौतिक गुणों से युक्त; बभौ—प्रकट हो गया हो।

तत्पश्चात् बिजली तथा गरज से युक्त घने नीले बादलों से आकाश आच्छादित हो गया। इस तरह आकाश तथा उसकी प्राकृतिक ज्योति उसी तरह ढक गये जिस तरह आत्मा प्रकृति के तीन गुणों से आच्छादित हो जाता है।

तात्पर्य : बिजली की उपमा सतोगुण से, गर्जना की रजोगुण से तथा बादलों की तमोगुण से दी गई है। इस तरह वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने पर बादलों से ढका आकाश उस शुद्ध आत्मा के सदृश है, जो प्रकृति के गुणों से विचलित हो जाता है क्योंकि तब यह आच्छादित हो जाता है, जिससे उसकी मूल ज्योतिर्मयी प्रकृति भौतिक गुणों के कुहासे से मन्द मन्द प्रतिबिम्बित हो पाती है।

अष्टौ मासान्निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु ।
स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

अष्टौ—आठ; मासान्—महीनों के दौरान; निपीतम्—पिया हुआ; यत्—जो; भूम्याः—पृथ्वी का; च—तथा; उद-मयम्—जल से युक्त; वसु—सम्पत्ति; स्व-गोभिः—अपनी ही किरणों से; मोक्तुम्—मुक्त करने के लिए; आरेभे—प्रारम्भ कर दिया; पर्जन्यः—सूर्य ने; काले—उचित समय; आगते—आ जाने पर।

सूर्य ने अपनी किरणों से आठ मास तक पृथ्वी की जल रूपी सम्पत्ति का शोषण किया था।

अब उपयुक्त समय आ गया था और सूर्य अपने उस संचित संपत्ति को मुक्त करने लगा।

तात्पर्य : आचार्यगण सूर्य द्वारा पृथ्वी की जल सम्पत्ति के भाप बनने की तुलना राजा द्वारा कर वसूल करने से करते हैं। श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण (भाग १, अध्याय २०) में इस रूपक की व्याख्या इस प्रकार की है, “बादल धूप द्वारा पृथ्वी से खींचा गया संचित जल है। सूर्य लगातार आठ मास तक पृथ्वी की सतह से सभी प्रकार के जल को भाप बनाकर उड़ाता है और यह जल बादलों के रूप में संचित होता है, जो आवश्यकतानुरूप जल के रूप में बँट जाते हैं। इसी प्रकार सरकार नागरिकों पर तरह तरह के कर लगाती है, जिसे नागरिक समुदाय कृषि, व्यापार तथा उद्योग जैसे अपने भौतिक कार्यों से चुकता करता है। इस तरह सरकार आयकर तथा विक्रीकर के रूप में भी कर लगा सकती है। इसकी उपमा सूर्य द्वारा पृथ्वी से जल खींचने से दी गई है। जब पृथ्वी पर पुनः जल की आवश्यकता होती है, तो वही सूर्य की धूप इस जल को बादल में बदलकर सारे विश्व में वितरित करती है। इसी प्रकार सरकार द्वारा संगृहीत करों को जनता में शैक्षणिक कार्य, जन कार्य, सफाई कार्य इत्यादि के रूप में वितरित कर देना चाहिए। अच्छी सरकार के लिए यह अनिवार्य है। सरकार को व्यर्थ में लुटाने के लिए ही कर नहीं लगाना चाहिए प्रत्युत संग्रहीत कर का उपयोग राज्य के जनकल्याण में किया जाना चाहिए।”

तडिद्वन्तो महामेघाश्चण्ड श्वसन वेपिताः ।
प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तडित्-वन्तः—बिजली का प्रदर्शन करते; महा-मेघाः—बड़े बड़े बादल; चण्ड—उग्र; श्वसन—वायु द्वारा; वेपिताः—हिलाये गये; प्रीणनम्—तृप्ति; जीवनम्—उनका जीवन (जल); हि—निस्सन्देह; अस्य—इस जगत का; मुमुचुः—मुक्त किया; करुणाः—दयालु व्यक्ति; इव—सदृश।

बिजली चमकाते बड़े बड़े बादल प्रचण्ड वायु के द्वारा हिलाये-डुलाये जाकर दूर ले जाये

गये थे। ये बादल दयालु पुरुषों की तरह इस संसार की खुशी के लिए अपना जीवन दान कर रहे थे।

तात्पर्य : जिस तरह कभी कभी महान् दयालु व्यक्ति समाज के सुख हेतु अपने जीवन या धन का उत्सर्ग कर देते हैं उसी तरह बादलों ने सूखी पृथ्वी पर जल बरसाया। यद्यपि इस तरह से बादल विनष्ट हो गये किन्तु पृथ्वी की खुशी के लिए उन्होंने मुक्तभाव से वर्षा की।

श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण में इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : “वर्षा ऋतु में साँरे देश के ऊपर प्रबल वायु झकझोरती है और जल बाँटने के लिए बादलों को एक से दूसरे स्थान तक ले जाती है। जब ग्रीष्म ऋतु के बाद पानी की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है, तो ये बादल एक धनी पुरुष की भाँति होते हैं। जिस तरह आवश्यकता पड़ने पर धनपति अपना सारा कोष खाली हो जाने पर भी, धन लुटा देता है उसी तरह ये बादल पृथ्वी की सतह पर अपना सारा जल वितरित करके स्वयं रिक्त हो जाते हैं।

कहा जाता है कि जब भगवान् रामचन्द्र के पिता महाराज दशरथ अपने शत्रुओं से लड़ते थे तो वे उनके पास इस तरह पहुँचते थे जैसे कोई किसान अनावश्यक पौधों और वृक्षों को उखाड़ता है। और जब दान देने की आवश्यकता पड़ती तो वे धन का वितरण इस तरह करते मानो बादल जल वितरित कर रहा हो। बादलों द्वारा जल का वितरण इतना उदार होता था कि इसकी तुलना महान् दानी व्यक्ति द्वारा धन वितरण से की जाती है। बादल से इतनी प्रचुर वर्षा होती है कि यह जल चट्टानों तथा पर्वतों पर और जहाँ आवश्यकता नहीं है उन सागरों पर भी बरसता है। बादल उस दानी व्यक्ति की तरह होता है, जो वितरण के लिए अपना कोष खोल देता है और पात्र या कुपात्र का भेदभाव नहीं करता। वह मुक्तहस्त दान देता है।”

अलंकारिक भाषा में बादलों में जो बिजली चमकती है, वह ऐसा प्रकाश है, जिससे वे पृथ्वी की दुखित अवस्था को देखते हैं। तेज बहनेवाली हवाएँ उनके गहरे साँस हैं जैसाकि किसी दुखी व्यक्ति में देखा जाता है। पृथ्वी की दुखित अवस्था देखकर बादल वायु में दयालु व्यक्ति की तरह काँपते हैं और इसलिए वे जल बरसाते हैं।

तपःकृशा देवमीढा आसीद्वर्षीयसी मही ।

यथैव काम्यतपसस्तनुः सम्प्राप्य तत्फलम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

तपः-कृशा—ग्रीष्म के ताप से दुर्बल; देव-मीढा—जलदेव द्वारा कृपापूर्वक छिड़की; आसीत्—हो गयी; वर्षीयसी—पूर्णतया पोषित; मही—पृथ्वी; यथा एव—जिस तरह; काम्य—इन्द्रिय तृप्ति पर आधारित; तपसः—तपस्वी का; तनुः—शरीर; सम्प्राप्य—प्राप्त करके; तत्—उस तपस्या का; फलम्—फल ।

ग्रीष्म के ताप से पृथ्वी कृषकाय हो चुकी थी किन्तु वर्षा के देवता द्वारा तर किये जाने पर पुनः पूरी तरह हरीभरी हो गई। इस तरह पृथ्वी उस व्यक्ति के समान थी जिसका शरीर भौतिक कामना से की गई तपस्या के कारण कृषकाय हो जाता है किन्तु तपस्या का फल प्राप्त हो जाने पर वह पुनः पूरी तरह हृष्ट पुष्ट हो उठता है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण में इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : “वर्षा के पूर्व सारी पृथ्वी सभी प्रकार की शक्तियों से क्षीण होकर अत्यन्त दुबली प्रतीत होने लगती है। वर्षा के बाद पृथ्वी की सम्पूर्ण सतह वनस्पति से हरीभरी हो उठती है और अत्यन्त स्वस्थ तथा बलिष्ठ दिखने लगती है। यहाँ पर भौतिक इच्छा की पूर्ति के लिए तपस्या करनेवाले व्यक्ति से इसकी तुलना की गई है। वर्षा ऋतु के बाद पृथ्वी की लहलहाती अवस्था की तुलना भौतिक इच्छाओं की पूर्ति होने से की गई है। कभी कभी जब कोई देश अवांछित सरकार द्वारा पराधीन बना लिया जाता है, तो सरकार पर नियंत्रण पाने के लिए व्यक्तियों तथा दलों को कठिन तपस्या करनी पड़ती है और जब वे उस पर नियंत्रण पा लेते हैं, तो वे खूब वेतन लेकर समृद्ध बन जाते हैं। यह भी वर्षा ऋतु में पृथ्वी के लहलहाने के तुल्य है। वस्तुतः मनुष्य को आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करने के लिए ही कठोर तपस्या करनी चाहिए। श्रीमद्भागवत में संस्तुति की गई है कि परमेश्वर के साक्षात्कार हेतु ही तपस्या करनी चाहिए। भक्ति में तपस्या स्वीकार करके मनुष्य अपने आध्यात्मिक जीवन को फिर से पा लेता है और आध्यात्मिक जीवन प्राप्त होते ही वह असीम आध्यात्मिक आनन्द का भोग करता है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी भौतिक लाभ के लिए तपस्या करता है, तो जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, उसे जो फल प्राप्त होता है, वह क्षणिक होता है और केवल अल्प ज्ञानी ही ऐसे फल की कामना करते हैं।”

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः ।

यथा पापेन पाषण्डा न हि वेदाः कलौ युगे ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

निशा-मुखेषु—सांध्यकालीन धुंधलके के समय; खद्योताः—जुगनु; तमसा—अंधकार के कारण; भान्ति—चमकते हैं; न—नहीं; ग्रहाः—नक्षत्रगण; यथा—जिस तरह; पापेन—पापकर्मों के कारण; पाषण्डाः—नास्तिक सिद्धान्त; न—नहीं; हि—निश्चय ही; वेदाः—वेद; कलौ युगे-इन् थे अगे ओफ् कलि.

वर्षा ऋतु के साँझ के धुंधलेपन में, अंधकार के कारण जुगनु तो चमक रहे थे किन्तु नक्षत्रगण प्रकाश नहीं बिखेर पा रहे थे, जिस प्रकार कि कलियुग में पापकृत्यों की प्रधानता से नास्तिक सिद्धान्त वेदों के असली ज्ञान को आच्छादित कर देते हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका इस प्रकार है : “वर्षा ऋतु में संध्या समय वृक्षों की चोटियों पर यत्रतत्र बहुत से जुगनु दिखते हैं और वे प्रकाश की तरह चमकते हैं किन्तु आकाश के नक्षत्र—यथा चाँद और सितारे—दृष्टिगोचर नहीं होते। इसी प्रकार कलियुग में नास्तिक अथवा दुष्ट लोगों की प्रधानता हो जाती है किन्तु आध्यात्मिक उत्थान के लिए वैदिक सिद्धान्तों का वास्तव में पालन करनेवाले व्यक्तियों का प्रायः लोप हो जाता है। इस कलियुग की तुलना वर्षा ऋतु से की गई है। इस युग में असली ज्ञान भौतिक सभ्यता की प्रगति के प्रभाव से ढक जाता है। सस्ते मनोधर्मी, नास्तिक तथा तथाकथित धार्मिक सिद्धान्त बनानेवाले लोग जुगनुओं की तरह प्रधान बन जाते हैं जबकि वैदिक सिद्धान्तों अथवा शास्त्रों के आदेशों का दृढ़ता से पालन करनेवाले व्यक्ति इस युग के बादलों द्वारा आच्छादित हो जाते हैं।

लोगों को चाहिए कि वे आकाश के वास्तविक ग्रहों—सूर्य, चन्द्रमा तथा तारों—का लाभ उठायें, जुगनुओं के प्रकाश का नहीं। वस्तुतः ये जुगनु रात्रि के अंधकार में कोई प्रकाश नहीं दे सकते। जिस तरह वर्षा ऋतु में भी कभी कभी बादल छट जाते हैं, तो सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे दीख पड़ते हैं उसी तरह इस कलियुग में भी कभी कभी कुछ लाभ मिलते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु का वैदिक आन्दोलन—जो हरे कृष्ण मंत्र कीर्तन का वितरण है—इसी तरह से समझा जाता है। जो लोग गम्भीरतापूर्वक असली जीवन की खोज करते हैं उन्हें चाहिए कि वे मनोधर्मियों तथा नास्तिकों के तथाकथित प्रकाश को न ग्रहण करके इस आन्दोलन से लाभ उठायें।”

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डुकाः ससृजुर्गिरः ।

तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्वाहाणा नियमात्यये ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; पर्जन्य—वर्षा के बादलों की; निनदम्—प्रतिध्वनि; मण्डुकाः—मेंढकों ने; ससृजुः—निकाली; गिरः—अपनी ध्वनि; तूष्णीम्—मौन भाव से; शयानाः—लेटे हुए; प्राक्—पहले; यद्वत्—जिस तरह; ब्राह्मणाः—ब्राह्मण छात्र; नियम-अत्यये—प्रातःकालीन कृत्यों को समाप्त करके।

वे मेंढक जो अभी तक मौन पड़े हुए थे, वर्षा ऋतु के बादलों की गर्जना सुनकर अचानक टराने लगे मानो शान्त भाव से प्रातःकालीन कृत्य करनेवाले ब्राह्मण विद्यार्थी अपने गुरु द्वारा बुलाए जाने पर अपना पाठ सुनाने लगे हों।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने इसकी टीका इस प्रकार की है : “प्रथम वर्षा के बाद जब बादलों में गर्जना होती है, तो सारे मेंढक टराने लगते हैं मानो एकाएक विद्यार्थीगण अपना पाठ पढ़ने लगे हों। विद्यार्थी सामान्यतः प्रातःकाल जल्दी जग जाते हैं। किन्तु वे स्वेच्छा से नहीं उठते अपितु जब मन्दिर या सांस्कृतिक संस्थान में घंटी बजती है तभी उठते हैं। वे आध्यात्मिक गुरु के आदेश से तुरन्त उठ जाते हैं और प्रातःकालीन नित्यकर्म करने के बाद वेदों का अध्ययन करने या वैदिक मंत्रों का उच्चारण करने बैठ जाते हैं। इसी तरह कलियुग के अंधकार में हर व्यक्ति सोता रहता है किन्तु किसी महान् आचार्य के पुकारते ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति वेदों का अध्ययन करने लगता है।”

आसन्नत्पथगामिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः ।

पुंसो यथास्वतन्त्रस्य देहद्रविण सम्पदः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

आसन्—हो गये; उत्पथ-गामिन्यः—अपने अपने मार्गों से विपथ; क्षुद्र—नगण्य; नद्यः—नदियाँ; अनुशुष्यतीः—सूखकर के; पुंसः—मनुष्य का; यथा—जिस तरह; अस्वतन्त्रस्य—जो स्वतंत्र नहीं है उसका (अपनी इन्द्रियों के वशीभूत); देह—शरीर; द्रविण—शारीरिक सम्पत्ति; सम्पदः—तथा सम्पत्ति।

वर्षा ऋतु के आगमन के साथ ही सूखी हुई क्षुद्र नदियाँ बढ़ने लगीं और अपने असली मार्गों को छोड़कर इधर उधर बहने लगीं मानो इन्द्रियों के वशीभूत किसी मनुष्य के शरीर, सम्पत्ति तथा धन हों।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका इस प्रकार है : “वर्षा ऋतु में अनेक पोखर, सरोवर तथा छोटी छोटी नदियाँ जल से भर जाती हैं अन्यथा वर्ष की शेष अवधि में सूखी रहती हैं। इसी तरह से भौतिकतावादी व्यक्ति शुष्क होते हैं किन्तु कभी कभी जब वे तथाकथित ऐश्वर्यशाली स्थिति में होते हैं—उनके घरबार, बालबच्चे या थोड़ी बहुत बैंक-बचत हो जाती है वे फलते-फूलते प्रतीत होते हैं किन्तु बाद में वे शीघ्र ही उसी तरह शुष्क हो जाते हैं जिस तरह छोटी छोटी नदियाँ तथा पोखर सूख

जाते हैं। विद्यापति कवि ने कहा है कि मित्र, परिवार, सन्तान, पत्नी इत्यादि की संगति में निश्चय ही कुछ आनन्द होता है किन्तु वह आनन्द मरुस्थल में एक बूँद के समान है। हर व्यक्ति सुख के पीछे उसी तरह पगलाया रहता है, जैसे कि मरुस्थल में हर व्यक्ति पानी के पीछे। यदि मरुस्थल में एक बूँद जल हो, तो कहने को तो जल है किन्तु उस जल की बूँद से होनेवाला लाभ नाममात्र का ही है। हम भौतिकवादी जीवन में सुख के समुद्र के पीछे पड़े रहते हैं किन्तु समाज, मित्र तथा संसारी प्रेम के रूप में हमें उसकी एक बूँद से अधिक नहीं मिल पाती है। हमारी तृप्ति कभी नहीं हो पाती जिस तरह कि छोटी छोटी नदियाँ, सरोवर तथा ताल-तलैया शुष्क मौसम में कभी जल से पूर्ण नहीं हो पाते।”

हरिता हरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपैश्च लोहिता ।

उच्छिलीन्धकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

हरिता:—हरिताभ; हरिभिः—हरी; शष्पैः—नई उगी घास से; इन्द्रगोपैः—इन्द्रगोप कीटों (बीरबहूटी) से; च—तथा; लोहिता—लालाभ; उच्छिलीन्ध—कुकुरमुत्तों द्वारा; कृत—की गई; छाया—छाया; नृणाम्—मनुष्यों के; श्रीः—ऐश्वर्य; इव—सदृश; भूः—पृथ्वी; अभूत्—हो गई।

नई उगी घास से पृथ्वी पत्रे (मरकत) की तरह हरी हो रही थी, इन्द्रगोप कीटों ने उसमें लाल रंग मिला दिया और श्वेत रंग के कुकुरमुत्तों ने और भी रंगत ला दी। इस प्रकार पृथ्वी उस व्यक्ति जैसी लगने लगी जो सहसा धनी बन जाता है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है कि नृणाम् शब्द राजसी व्यक्तियों का सूचक है। इस तरह गहरे हरे खेत जो चमकीले लाल कीड़ों तथा श्वेत रंग के कुकुरमुत्तों रूपी छत्तों से रंगबिरंगे लग रहे थे उनकी तुलना शाही सैन्य-शक्ति के प्रदर्शन से की जा सकती है।

क्षेत्राणि शष्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ।

मानिनामनुतापं वै दैवाधीनमजानताम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

क्षेत्राणि—खेत; शष्य-सम्पद्भिः—अपनी अनाज की सम्पत्ति से; कर्षकाणाम्—कृषकों को; मुदम्—हर्ष; ददुः—प्रदान किया; मानिनाम्—मिथ्या गर्व करनेवालों को; अनुतापम्—जलन, पश्चात्ताप; वै—निस्सन्देह; दैव-अधीनम्—भाग्य के अधीन; अजानताम्—न जाननेवालों को।

अपनी अन्नरूपी सम्पदा से सारे खेत किसानों को प्रफुल्लित कर रहे थे। किन्तु वही खेत उन लोगों के हृदयों में पश्चात्ताप उत्पन्न कर रहे थे, जो इतने घमण्डी थे कि खेती के कार्य में नहीं

लगना चाहते थे और यह नहीं समझ पाते थे कि किस तरह हर वस्तु भगवान् के अधीन है।

तात्पर्य : अधिक वर्षा होने पर बड़े शहरों में रहने वाले लोगों का घबड़ा उठना एक सामान्य बात है। वे या तो समझते नहीं या भूल चुके हैं कि यह वर्षा उन फसलों को लहलहायेगी जिनसे प्राप्त अन्न को वे खाएँगे। उन्हें खाना तो अच्छा लगता है किन्तु वे भूल जाते हैं कि भगवान् इस वर्षा से न केवल मनुष्यों को अन्नदान दे रहे हैं अपितु पौधों, पशुओं तथा स्वयं पृथ्वी को पोषित कर रहे हैं।

आधुनिक नजाकत भरे लोग कृषिकर्म में लगे व्यक्तियों पर नाक-भों सिकोड़ते हैं। अमरीकी लोकभाषा में सीधेसादे कम बुद्धिमान व्यक्ति को कभी कभी “किसान” (फार्मर) कहा जाता है। कुछ ऐसी सरकारी एजेंसियाँ भी हैं, जो कृषि-उत्पादन को सीमित रखना चाहती हैं क्योंकि कुछ पूँजीपति डरते रहते हैं कि इसका प्रभाव बाजार-मूल्यों पर पड़ सकता है। आधुनिक सरकारें नाना प्रकार के कृत्रिम एवं चालाकी के कार्यों में लगी रहती हैं जिससे विश्व-भर में, यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमरीका में भी, गरीबों में, अन्न की कमी पाई जाती है फिर भी कुछ सरकारें फसल न बोनने के लिए किसानों को पैसा देती हैं। कभी कभी ये सरकारें पर्याप्त खाद्य वस्तुओं को समुद्र में फेंकवा देती हैं। इस तरह अहंवादी तथा अज्ञानी प्रशासन जो इतने घमंडी होते हैं कि भगवान् के नियमों का पालन नहीं करना चाहते या इतने बेसमझ होते हैं कि उन्हें मानना नहीं चाहते, लोगों में निराशा उत्पन्न करते रहेंगे जबकि ईशभावनाभावित सरकारें सबों को प्रचुर अन्न तथा सुख प्रदान करती रहेंगी।

जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया ।

अबिभ्रन्नृचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

जल—जल के; स्थल—तथा स्थल के; ओकसः—निवासी; सर्वे—सभी; नव—नवीन; वारि—जल का; निषेवया—सेवन करने से; अबिभ्रन्—ग्रहण किया; रुचिरम्—आकर्षक; रूपम्—रूप; यथा—जिस तरह; हरि-निषेवया—भगवान् की भक्ति करने से।

चूँकि जल तथा स्थल के समस्त प्राणियों ने नवीन वर्षाजल का लाभ उठाया इसलिए उनके रूप आकर्षक एवं सुहावने हो गये जिस तरह कोई भक्त भगवान् की सेवा में लगने पर सुन्दर लगने लगता है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने इस प्रकार टीका की है : “इस्कान में हमें अपने विद्यार्थियों के साथ इसका व्यावहारिक अनुभव है। विद्यार्थी बनने के पूर्व वे गंदे लगते थे भले ही उनके अंग-प्रत्यंग

रूपवान थे। किन्तु कृष्णभावनामृत के विषय में कोई जानकारी न रखने के कारण वे गन्दे और दुखियारे से लगते थे। अब कृष्णभावनामृत ग्रहण करने के अनन्तर उनका स्वास्थ्य सुधर गया है और यम-नियमों का पालन करने से उनकी शारीरिक कान्ति भी बढ़ गई है। जब वे केसरिया वस्त्र धारण करके अपने मस्तक पर तिलक लगा लेते हैं और अपने हाथों में तथा गले में मालाएँ लिये रहते हैं, तो वे इस तरह लगते हैं मानो सीधे वैकुण्ठ से चले आ रहे हों।”

सरिद्धिः सङ्गतः सिन्धुश्चक्षुभश्चसनोर्मिमान् ।
अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

सरिद्धिः—नदियों समेत; सङ्गतः—मिलने से; सिन्धुः—सागर; चक्षुभ—क्षुब्ध हो उठा; शसन—वायु से उड़कर; ऊर्मि-मान्—लहरों से युक्त; अपक्व—अप्रौढ़; योगिनः—योगी का; चित्तम्—मन; काम-अक्तम्—कामवासना से रंजित; गुण-युक्—इन्द्रिय तृप्ति के विषयों से सम्बन्ध रखने से; यथा—जिस तरह।

जहाँ जहाँ नदियाँ आकर समुद्र से मिलीं, वहाँ समुद्र विक्षुब्ध हो उठा और हवा से इसकी लहरें इधर उधर उठने लगीं, जिस तरह कि किसी अपरिपक्व योगी का मन कामवासना से रंजित होने तथा इन्द्रियतृप्ति के विषयों के प्रति अनुरक्त होने से डगमगाने लगता है।

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

गिरयः—पर्वत; वर्ष-धाराभिः—जल धारण किये हुए बादलों द्वारा; हन्यमानाः—चोट खाकर; न विव्यथुः—हिले नहीं; अभिभूयमानाः—प्रहार किये जाने पर; व्यसनैः—संकटों से; यथा—जिस तरह; अधोक्षज-चेतसः—भगवान् में लीन मन वाले।

जिस प्रकार भगवान् में लीन मन वाले भक्तगण सभी प्रकार के संकटों से प्रहार किये जाने पर भी शान्त बने रहते हैं उसी प्रकार वर्षा ऋतु में जलवाही बादलों द्वारा बारम्बार प्रहार किये जाने पर भी पर्वत तनिक भी विचलित नहीं हुए।

तात्पर्य : पर्वत मूसलाधार वर्षा होने पर तनिक भी विचलित नहीं होते प्रत्युत उनकी गर्त धुल जाती है और वे सुन्दर तथा दीप्तिमान लगने लगते हैं। इसी प्रकार भगवान् का उच्च भक्त विषम परिस्थितियों में भी अपने भक्ति सम्बन्धी कार्यों से चलायमान नहीं होता प्रत्युत इससे इस जगत की अनुरक्ति रूपी उसके हृदय की धूल साफ हो जाती है। इस तरह कठिन परिस्थितियों को सहन करने से भक्त सुन्दर तथा कान्तिमान लगने लगता है। वस्तुतः एक भक्त जीवन की सारी पराजयों को भगवान्

की कृपा के रूप में स्वीकार करता है और सारे कष्टों को अपने पूर्व दुष्कर्मों का फल मानता है ।

मार्गा बभूवुः सन्दिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः ।

नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालेन चाहताः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

मार्गाः—रास्ते; बभूवुः—हो गये; सन्दिग्धाः—अस्पष्ट; तृणैः—घास से; छन्नाः—ढके हुए; हि—निस्सन्देह; असंस्कृताः—अस्वच्छ; न अभ्यस्यमानाः—न पढ़े जाने से; श्रुतयः—शास्त्र; द्विजैः—ब्राह्मणों द्वारा; कालेन—समय के प्रभाव से; च—तथा; आहताः—भ्रष्ट ।

वर्षा ऋतु में रास्तों को साफ न करने से वे घास-फूस और कूड़े-करकट से ढक गये और उन्हें पहचान पाना कठिन हो गया । ये रास्ते उन धार्मिक शास्त्रों (श्रुतियों) के तुल्य थे, जो ब्राह्मणों द्वारा अध्ययन न किये जाने से भ्रष्ट हो गये हों और कालक्रम से आच्छादित हो चुके हों ।

लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ।

स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

लोक—सारे जगत के; बन्धुषु—मित्र; मेघेषु—बादलों में; विद्युतः—बिजली; चल-सौहृदाः—जिनकी मित्रता चलायमान है; स्थैर्यम्—स्थिरता; न चक्रुः—नहीं बनाये रखते; कामिन्यः—कामुक स्त्रियाँ; पुरुषेषु—पुरुषों में; गुणिषु—गुणवान; इव—जिस तरह ।

यद्यपि बादल सारे जीवों के शुभैषी मित्र होते हैं लेकिन दुर्बलमना चंचल बिजली बादलों के एक समूह से दूसरे समूह में इस तरह गति करने लगी मानो गुणवान पुरुषों के प्रति भी विश्वासघात करनेवाली कामुक स्त्रियाँ हों ।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : “वर्षा ऋतु में बिजली एक क्षण बादलों के एक समूह में प्रकट होती है, तो दूसरे क्षण दूसरे समूह में । इस घटना की तुलना उस कामुक स्त्री से की गई है, जो अपना चित्त किसी एक पुरुष पर नहीं टिका पाती । बादल की तुलना योग्य व्यक्ति से की गई है क्योंकि वह वर्षा द्वारा अनेक लोगों को जीवन-दान देता है । इसी तरह योग्य पुरुष अनेक प्राणियों का—यथा अपने परिवार अथवा व्यापार के अनेक काम करनेवालों का—भरण-पोषण करता है । दुर्भाग्यवश उसका सारा जीवन उसको तलाक देनेवाली पत्नी के कारण विक्षुब्ध हो सकता है और जब पति क्षुब्ध रहता है, तो सारा परिवार बरवाद हो जाता है, बच्चे अस्तव्यस्त हो जाते हैं, व्यापार ठप्प हो जाता है और हर काम पर बुरा प्रभाव पड़ता है । अतः संस्तुति की जाती है कि जो स्त्री कृष्णभावनामृत में आगे

बढ़ना चाहती हो वह अपने पति के साथ शान्ति से रहे और पति-पत्नी किसी भी परिस्थिति में एक-दूसरे से अलग न हों। पति-पत्नी को मैथुन में संयम बरतना चाहिए और अपने मन को कृष्णभावनामृत में केन्द्रित करना चाहिए जिससे उनका जीवन सफल हो सके। आखिर इस भौतिक जगत में पुरुष को स्त्री की और स्त्री को पुरुष की आवश्यकता पड़ती है। जब वे मिल जाँय तो उन्हें कृष्णभावनामृत में शान्तिपूर्वक रहना चाहिए और बादलों के एक समूह से दूसरे समूह में चमकनेवाली बिजली की तरह चंचल नहीं होना चाहिए।”

धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ।

व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान्पुरुषो यथा ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

धनुः—धनुष (इन्द्रधनुष); वियति—आकाश में; माहा-इन्द्रम्—इन्द्र का; निर्गुणम्—गुणहीन (प्रत्यंचारहित); च—यद्यपि; गुणिनि—आकाश में, जिसमें ध्वनि जैसा निश्चित गुण पाया जाता है; अभात्—प्रकट हुआ; व्यक्ते—व्यक्त जगत के भीतर; गुण-व्यतिकरे—भौतिक गुणों की पारस्परिक क्रियाओं वाले; अगुण-वान्—भौतिक गुणों से सम्बन्ध न रखनेवाले; पुरुषः—परम पुरुष; यथा—जिस तरह।

जब उस आकाश में इन्द्रधनुष प्रकट हुआ जिसमें गर्जना करने का गुण था, तो वह सामान्य धनुषों से भिन्न था क्योंकि वह प्रत्यञ्चा पर टिका हुआ नहीं था। इसी प्रकार जब भगवान् इस जगत में, जो कि भौतिक गुणों की पारस्परिक क्रिया स्वरूप है, प्रकट होते हैं, तो वे सामान्य पुरुषों से भिन्न होते हैं क्योंकि वे समस्त भौतिक गुणों से मुक्त तथा समस्त भौतिक दशाओं से स्वतंत्र होते हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका इस प्रकार है : “कभी कभी बादलों की गर्जना के अतिरिक्त इन्द्रधनुष निकलता है, जो प्रत्यञ्चारहित धनुष जैसा प्रतीत होता है। सामान्यतया धनुष वक्र स्थिति में इसीलिए बना रहता है क्योंकि इसके दोनों सिरे प्रत्यञ्चा (डोरी) द्वारा बँधे रहते हैं किन्तु इन्द्रधनुष में कोई ऐसी प्रत्यञ्चा नहीं होती फिर भी वह आकाश में बहुत अच्छी तरह टिका रहता है। इसी प्रकार जब भगवान् इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं, तो वे सामान्य व्यक्ति की तरह प्रकट तो होते हैं किन्तु वे किसी भौतिक अवस्था पर टिके नहीं होते। भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि वे अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा, जो कि बाह्य शक्ति के बन्धन से मुक्त है, प्रकट होते हैं। जो सामान्य प्राणी के लिए बन्धन है, वही भगवान् के लिए स्वतंत्रता है।”

न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ।
अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

न रराज—चमका नहीं; उडुपः—चन्द्रमा; छन्नः—ढका हुआ; स्व-ज्योत्स्ना—अपनी चाँदनी से; राजितैः—प्रकाशित; घनैः—बादलों से; अहम्-मत्या—मिथ्या अहंकार से; भासितया—प्रकाशित; स्व-भासा—अपनी ही द्युति से; पुरुषः—जीव; यथा—जिस तरह ।

वर्षा ऋतु में बादलों से ढके रहने के कारण चन्द्रमा के प्रकट होने में व्यवधान पड़ता था और यही बादल चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित होते थे। इसी प्रकार इस भौतिक जगत में मिथ्या अहंकार के आवरण से जीव प्रत्यक्ष प्रकट नहीं हो पाता जबकि वह स्वयं शुद्ध आत्मा की चेतना से प्रकाशित होता है।

तात्पर्य : यहाँ पर दिया गया दृष्टान्त अत्युत्तम है। वर्षा ऋतु में हम आकाश में चन्द्रमा को नहीं देख सकते क्योंकि वह बादलों से ढका रहता है। किन्तु ये बादल चन्द्रमा की ही किरणों के प्रकाश से चमकीले बनते हैं। इसी प्रकार इस बद्ध जगत में हम प्रत्यक्षतः आत्मा को नहीं देख पाते क्योंकि हमारी चेतना मिथ्या अहंकार से आवृत रहती है, जो भौतिक जगत और भौतिक शरीर से एक मिथ्या पहचान है। तो भी आत्मा की निजी चेतना से ही मिथ्या अहंकार प्रकाशित होता है।

जैसाकि गीता में वर्णन हुआ है, आत्मा की शक्ति चेतना है और जब यह चेतना मिथ्या अहंकार के पर्दे से होकर प्रकट होती है, तो वह धुँधली भौतिक चेतना के रूप में प्रकट होती है, जिसमें आत्मा या ईश्वर की प्रत्यक्ष दृष्टि नहीं होती। भौतिक जगत में बड़े से बड़े दार्शनिक परम सत्य के विषय में बोलते समय अंततः धुँधले द्वैत का सहारा लेते हैं जिस प्रकार कि बादल से ढका आकाश चन्द्रमा की चाँदनी को धुँधले तथा अप्रत्यक्ष रूप में ही प्रदर्शित करता है।

भौतिक जीवन में हमारा मिथ्या अहंकार प्रायः उत्साहप्रद, आशापूर्ण तथा विभिन्न सांसारिक मामलों से परिचित-सा लगता है और ऐसी चेतना ही हमें इस जगत में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती है। किन्तु सचाई तो यह है कि हम अपनी मूल शुद्ध चेतना के, जो कि कृष्णभावनामृत अर्थात् आत्मा और ईश्वर का सीधा निरूपण है, धुँधले प्रतिबिम्ब का ही अनुभव करते हैं। इसकी परवाह न करते हुए कि यह मिथ्या अहंकार हमारी असली आध्यात्मिक चेतना को जो पूर्णरूपेण ज्योतिर्मय और आनंदमय है मन्द बनाता है। हम त्रुटिवश सोचते हैं कि भौतिक चेतना ज्ञान तथा आनन्द से ओतप्रोत

है। इसकी तुलना इस विचार से की जा सकती है कि प्रकाशवान बादल रात में आकाश को प्रकाशित करते हैं जबकि तथ्य यह है कि चाँदनी आकाश को प्रकाशित करती है और बादल तो चाँदनी के मार्ग में बाधक बनते हैं और उसे मन्द बनाते हैं। बादल इसलिए प्रकाशमय प्रतीत होते हैं क्योंकि वे चन्द्रमा की चमकीली किरणों को छानते तथा अवरुद्ध करते हैं। इसी प्रकार कभी कभी भौतिक चेतना आनन्दमय या प्रकाशयुक्त प्रतीत होती है क्योंकि यह आत्मा से आनेवाली मूल आनन्दमय तथा प्रकाशित चेतना को रोक या छान रही होती है। यदि हम इस श्लोक में दिये हुए कुशल दृष्टान्त को समझ सकें तो सरलता से कृष्णभावनामृत में आगे बढ़ सकते हैं।

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दञ्छिखण्डिनः ।

गृहेषु तप्तनिर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मेघ—बादलों का; आगम—आगमन होने से; उत्सवाः—उत्सव मनानेवाले; हृष्टाः—प्रसन्न हुए; प्रत्यनन्दन्—अभिनन्दन हेतु चिल्ला पड़े; शिखण्डिनः—मोरगण; गृहेषु—अपने घरों में; तप्त—दुखित; निर्विण्णाः—और तब सुखी बनते हैं; यथा—जिस तरह; अच्युत—अच्युत भगवान् के; जन—भक्तों के; आगमे—आगमन पर।

जब मोरों ने बादलों को आते देखा तो वे उल्लासित हो गये और हर्षयुक्त अभिनन्दन में टेरने लगे जिस तरह गृहस्थ जीवन में दुखित लोग अच्युत भगवान् के शुद्ध भक्तों के आगमन पर हर्षित हो जाते हैं।

तात्पर्य : शुष्क ग्रीष्म ऋतु के बाद प्रथम गर्जन करते वर्षा के बादलों के आगमन के साथ ही मोर प्रफुल्लित हो उठते हैं और अत्यधिक सुख में नाचने लगते हैं। श्रील प्रभुपाद की टीका है : “हमें इसका व्यावहारिक अनुभव है कि कृष्णभावनामृत में सम्मिलित होने के पूर्व हमारे बहुत से शिष्य शुष्क और खिन्न थे किन्तु भक्तों के सम्पर्क में आने के बाद वे अब प्रफुल्लित मोरों की तरह नाच रहे हैं।”

पीत्वापः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः ।

प्राक्क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

पीत्वा—पीकर; आपः—जल; पाद-पाः—वृक्ष; पद्भिः—अपने पाँवों से; आसन्—धारण कर लिया; नाना—विविध; आत्म-मूर्तयः—शारीरिक स्वरूप; प्राक्—पहले; क्षामाः—क्षीण; तपसा—तपस्या से; श्रान्ताः—थके हुए; यथा—जिस तरह; काम-अनुसेवया—प्राप्त वांछित फलों को भोगकर के।

जो वृक्ष दुबले हो गए थे तथा सूख गये थे उनके शरीर के विभिन्न अंग अपनी जड़ों (पाँवों)

से वर्षा का नया जल पाकर लहलहा उठे। इसी तरह तपस्या के कारण जिसका शरीर पतला और दुर्बल हो जाता है, वह पुनः उस तपस्या के माध्यम से प्राप्त भौतिक वस्तुओं का भोग करके स्वस्थ शरीरवाला दिखने लगता है।

तात्पर्य : पाद शब्द का अर्थ है “पाँव” तथा पा का अर्थ है “पीना”। वृक्ष पादप कहलाते हैं क्योंकि वे अपनी जड़ों से जल पीते हैं, जो उनके पैरों के तुल्य हैं। वर्षा का नवीन जल पीकर वृन्दावन के वृक्षों में नई पत्तियाँ, कलियाँ तथा फूल आने लगे और उनमें नवीन वृद्धि होने लगी। इसी तरह भौतिकतावादी व्यक्ति प्रायः अपनी अभीप्सित वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए तपस्या करते हैं। उदाहरणार्थ, अमरीका के राजनैतिक व्यक्ति अपने चुनाव के अभियान के समय देहातों की यात्रा करते समय कठोर तपस्या करते हैं। इसी तरह व्यापारी लोग भी अपने व्यापार को सफल बनाने के लिए निजी सुख-सुविधा को तिलांजलि दे देते हैं। ऐसे तपस्वी व्यक्ति तपस्या का फल प्राप्त करने पर पुनः स्वस्थ तथा संतुष्ट हो जाते हैं जिस तरह वृक्ष शुष्क तथा तप्त ग्रीष्म की तपस्या सहन करने के बाद वर्षा का जल उत्सुकता से पीकर बढ़ने लगते हैं।

सरःस्वशान्तरोधःसु न्यूषुरङ्गापि सारसाः ।

गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सरःसु—सरोवरों में; अशान्त—बेचैन; रोधःसु—तटों पर; न्यूषुः—रहे आते हैं; अङ्ग—हे राजा; अपि—निस्सन्देह; सारसाः—सारस पक्षी; गृहेषु—अपने अपने घरों में; अशान्त—बेचैन; कृत्येषु—कार्यों में; ग्राम्याः—भौतिकतावादी व्यक्ति; इव—निस्सन्देह; दुराशयाः—दूषित विचारवाले।

वर्षाकाल में सरोवरों के तटों के विक्षुब्ध होने पर भी सारस पक्षी तटों पर रहते रहे जिस तरह दूषित मनवाले भौतिकतावादी व्यक्ति अनेक उत्पातों के बावजूद घरों पर ही रहते जाते हैं।

तात्पर्य : वर्षा ऋतु के दौरान प्रायः सरोवरों के किनारों पर कीचड़ फैल जाता है और कभी कभी काँटेदार झाड़ियाँ, कूड़ा-करकट एवं पत्थर एकत्र हो जाते हैं। इन असुविधाओं के बावजूद बत्तखें तथा सारस पक्षी सरोवर के तटों पर ही मँडराते रहते हैं। इसी तरह गृहस्थ जीवन में असंख्य पीड़ाजनक घटनाएँ होती रहने के बावजूद भौतिकतावादी व्यक्ति अपने सयाने पुत्रों के हाथ में परिवार का भार सौंपने और आध्यात्मिक प्रगति की ओर अग्रसर होने का नाम तक नहीं लेता। वह ऐसे विचार को असभ्य और दिल दहलानेवाला मानता है क्योंकि वह परब्रह्म और उनसे अपने सम्बन्ध के विषय में

पूरी तरह अनजान रहता है ।

जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे ।

पाषण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

जल-ओघैः—बाढ़ के पानी से; निरभिद्यन्त—टूटे हुए; सेतवः—बाँध; वर्षति—जब वृष्टि होती है; ईश्वरे—इन्द्र; पाषण्डिनाम्—नास्तिकों के; असत्-वादैः—झूठे सिद्धान्तों से; वेद-मार्गाः—वेदों के पथ; कलौ—कलियुग में; यथा—जिस तरह ।

जब इन्द्र ने अपनी वर्षा छोड़ भेजी तो बाढ़ के पानी से खेतों में सिंचाई के बाँध उसी तरह टूट गये जिस तरह कलियुग में नास्तिकों के सिद्धान्तों से वैदिक आदेशों की सीमाएँ टूट जाती हैं ।

व्यमुञ्चन्वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्यश्चामृतं घनाः ।

यथाशिषो विशपतयः काले काले द्विजेरिताः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

व्यमुञ्चन्—मुक्त किया; वायुभिः—वायु के द्वारा; नुन्नाः—प्रेरित; भूतेभ्यः—सारे जीवों के लिए; च—तथा; अमृतम्—अमृत तुल्य जल; घनाः—बादल; यथा—जिस तरह; आशिषः—दातव्य आशीर्वाद; विट्-पतयः—राजा; काले काले—समय समय पर; द्विज—ब्राह्मणों द्वारा; ईरिताः—एन्चोउरगेद्.

वायु द्वारा प्रेरित बादलों ने सारे जीवों के लाभ हेतु अपना अमृत तुल्य जल उसी तरह विमुक्त किया जिस तरह राजागण अपने ब्राह्मण पुरोहितों के आदेशानुसार अपनी प्रजा में दान बाँटते हैं ।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : “वर्षा ऋतु में वायु द्वारा उछाले गये बादल जल प्रदान करते हैं जिसका स्वागत अमृत के समान होता है । जब वेदों के अनुयायी ब्राह्मणजन राजा तथा धनी व्यापारी जैसे समृद्ध व्यक्तियों को बड़े बड़े यज्ञ सम्पन्न करने के लिए दान देने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, तो ऐसी सम्पत्ति का वितरण भी अमृत तुल्य होता है । मानव समाज के चातुर्वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—पारस्परिक सहयोग से शान्तिपूर्वक रहने के लिए हैं किन्तु ऐसा तभी सम्भव है जब उनका मार्गदर्शन ऐसे कुशल वैदिक ब्राह्मण करें जो यज्ञ करते हों और धन का समान वितरण करें ।

एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जुरजम्बुमत् ।

गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्भरिः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; वनम्—जंगल में; तत्—उस; वर्षिष्ठम्—अतीव शोभायमान; पक्व—पके; खर्जूर—खजूर; जम्बु—तथा जामुन; मत्—से युक्त; गो—गौवों; गोपालैः—तथा ग्वालबालों द्वारा; वृतः—घिरे हुए; रन्तुम्—खेलने के उद्देश्य से; स-बलः—बलराम सहित; प्राविशत्—प्रवेश किया; हरिः—कृष्ण ने।

जब वृन्दावन का जंगल पके खजूरों तथा जामुन के फलों से लदकर इस प्रकार शोभायमान था, तो भगवान् श्रीकृष्ण अपनी गौवों तथा ग्वालबालों से घिरकर एवं श्रीबलराम के साथ उस वन में आनन्द मनाने के लिए प्रविष्ट हुए।

धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ।

ययुर्भगवताहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनाः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

धेनवः—गौवें; मन्द-गामिन्यः—मन्द गति से चलनेवाली; ऊधः—अपने थनों के; भारेण—भार से; भूयसा—अत्यधिक; ययुः—गई; भगवता—भगवान् द्वारा; आहूताः—बुलाई जाने पर; द्रुतम्—शीघ्र; प्रीत्या—स्नेहवश; स्नुत—नम; स्तनाः—स्तन, या चूचुक।

गौवों को अपने दूध से भरे थनों के भार के कारण मन्द गति से चलना पड़ा किन्तु ज्योंही भगवान् ने उन्हें बुलाया वे तुरन्त दौड़ पड़ीं और उनके प्रति स्नेह के कारण उनके स्तन गीले हो गये।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : “गौवें नई घास चरकर काफी पुष्ट हो गई थी और उनके थन दूध से भर गये। जब भगवान् कृष्ण ने नाम ले लेकर उन्हें पुकारा तो वे स्नेहवश तुरन्त उनके पास आ गईं और उनकी इस हर्षावस्था में उनके थनों से दूध बहने लगा।”

वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः ।

जलधारा गिरेर्नादादासन्ना ददृशे गुहाः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

वन-ओकसः—वनवासी कन्याएँ; प्रमुदिताः—हर्षित; वन-राजीः—जंगल के वृक्ष; मधु-च्युतः—मीठा रस टपकाते हुए; जल-धाराः—झरने; गिरेः—पर्वतों पर; नादात्—उनकी प्रतिध्वनि से; आसन्नाः—निकट ही; ददृशे—देखा; गुहाः—गुफाएँ।

भगवान् ने हर्षित वनवासी कन्याओं, मधुर रस टपकाते वृक्षों तथा पर्वतीय झरनों को देखा जिनकी प्रतिध्वनि से सूचित हो रहा था कि पास ही गुफाएँ हैं।

क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ।

निर्विश्य भगवान्नेमे कन्दमूलफलाशनः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी कभी; वनस्पति—वृक्ष के; क्रोडे—कोटर में; गुहायाम्—गुफा में; च—अथवा; अभिवर्षति—वर्षा होने पर; निर्विश्य—प्रवेश करके; भगवान्—भगवान् ने; रेमे—रमण किया; कन्द-मूल—कन्दमूल, जड़ें; फल—तथा फल; अशनः—खाकर।

जब वर्षा होती तो भगवान् कभी किसी गुफा में, तो कभी वृक्ष के कोटर में घुस जाते जहाँ वे खेलते तथा कन्दमूल और फल खाते।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी बतलाते हैं कि वर्षा ऋतु में कन्दमूल अत्यन्त कोमल तथा स्वादिष्ट हो जाते हैं और भगवान् कृष्ण जंगली फलों के साथ साथ उन्हें भी खाया करते थे। कृष्ण तथा उनके बालमित्र कभी किसी वृक्ष के कोटर में या फिर गुफा के भीतर बैठकर वर्षा के रुकने तक प्रतीक्षा करते हुए क्रीड़ाओं का आनन्द उठाते थे।

दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलान्तिके ।
सम्भोजनीयैर्बुभुजे गोपैः सङ्कर्षणान्वितः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

दधि-ओदनम्—दही के साथ मिला भात; समानीतम्—भेजा हुआ; शीलायाम्—पत्थर की चट्टान पर; सलिल-अन्तिके—जल के निकट; सम्भोजनीयैः—अपने साथ भोजन करनेवाले; बुभुजे—भोजन किया; गोपैः—ग्वालबालों के साथ; सङ्कर्षण-अन्वितः—बलराम समेत।

भगवान् कृष्ण श्रीबलराम तथा ग्वालबालों के साथ बैठकर घर से भेजे गये दही-भात को भगवान् संकर्षण और ग्वालबालों के साथ खाते जो सदैव उनके साथ ही भोजन किया करते थे। वे पानी के निकट के किसी विशाल शिला पर बैठकर भोजन करते।

शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ।
तृप्तान्वृषान्वत्सतरान्गाश्च स्वोद्योभरश्रमाः ॥ ३० ॥
प्रावृट्श्रयं च तां वीक्ष्य सर्वकालसुखावहाम् ।
भगवान्पूजयां चक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

शाद्वल—घास के मैदान के; उपरि—ऊपर; संविश्य—बैठकर; चर्वतः—चरती हुई; मीलित—बन्द; ईक्षणान्—आँखों को; तृप्तान्—संतुष्ट; वृषान्—साँड़ों को; वत्सतरान्—बछड़ों को; गाः—गौवों को; च—और; स्व—अपने अपने; ऊद्यः—थनों के; भर—भार से; श्रमाः—थकी; प्रावृट्—वर्षा ऋतु का; श्रियम्—ऐश्वर्य; च—तथा; ताम्—उसको; वीक्ष्य—देखकर; सर्व-काल—सदैव; सुख—आनन्द; आवहाम्—देते हुए; भगवान्—भगवान् ने; पूजयाम् चक्रे—सम्मान किया; आत्म-शक्ति—अपनी अन्तरंगा शक्ति से; उपबृंहिताम्—विस्तार किया।

भगवान् कृष्ण ने हरी घास पर बैठे और आँखें बन्द किये चरते हुए संतुष्ट साँड़ों, बछड़ों तथा गौवों पर नजर डाली और देखा कि गौवें अपने दूध से भरे भारी थनों के भार से थक गई हैं। इस

तरह परम आनन्द के शाश्वत स्रोत वृन्दावन की वर्षा ऋतु के सौन्दर्य और ऐश्वर्य का निरीक्षण करते हुए भगवान् ने उस ऋतु को नमस्कार किया जो उन्हीं की अन्तरंगा शक्ति का विस्तार थी।

तात्पर्य : वृन्दावन में वर्षा ऋतु का अनुपम सौन्दर्य श्रीकृष्ण के आनन्द-विहार में वृद्धि करने के हेतु है। इसलिए भगवान् के प्रेमालापों के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए उनकी अन्तरंगा शक्ति इस अध्याय में वर्णित सारे प्रबन्ध करती है।

एवं निवसतोस्तस्मिन्नामकेशवयोर्व्रजे ।

शरत्समभवद्व्यभ्रा स्वच्छाम्बुपरुषानिला ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; निवसतोः—दोनों के रहते हुए; तस्मिन्—उस; राम-केशवयोः—राम तथा केशव के; व्रजे—वृन्दावन में; शरत्—शरद ऋतु; समभवत्—पूरी तरह प्रकट हो आई; व्यभ्रा—बादलों से मुक्त आकाश; स्वच्छ-अम्बु—स्वच्छ जल वाले; अपरुष-अनिला—तथा मन्द वायु।

इस तरह जब भगवान् राम तथा भगवान् केशव वृन्दावन में रह रहे थे तो शरद ऋतु आ गई

जिसमें आकाश बादलों से रहित, जल स्वच्छ तथा वायु मन्द हो जाती है।

शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ।

भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

शरदा—शरद ऋतु के प्रभाव से; नीरज—कमल के फूल; उत्पत्त्या—फिर से उत्पन्न करनेवाला; नीराणि—जल समूह; प्रकृतिम्—अपनी प्राकृतिक अवस्था में (स्वच्छ); ययुः—हो गये; भ्रष्टानाम्—पतितों के; इव—सदृश; चेतांसि—मन; पुनः—एक बार फिर; योग—भक्ति के; निषेवया—अभ्यास से।

कमलपुष्पों को पुनः उत्पन्न करनेवाली शरद ऋतु ने विविध जलाशयों को पूर्ववत् स्वच्छ

(निर्मल) बना दिया जिस तरह कि भक्तियोग पतित योगियों के मनों को पुनः इस ओर लौटने

पर शुद्ध बनाता है।

व्योम्नोऽब्धं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ।

शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाशुभम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

व्योम्नः—आकाश में; अप्-भ्रम्—बादल; भूत—पशुओं की; शाबल्यम्—बहुलता; भुवः—पृथ्वी के; पङ्कम्—कीचड़; अपाम्—जल का; मलम्—मैल; शरत्—शरद ऋतु ने; जहार—हटा दिया; आश्रमिणाम्—मानव समाजके चारों आश्रमों के सदस्यों का; कृष्णे—कृष्ण में; भक्तिः—भक्ति; यथा—जिस तरह; अशुभम्—सारे अशुभ को।

शरद ऋतु ने आकाश से बादलों को हटा दिया, पशुओं को भीड़भाड़ भरी जगहों से

निकाल लिया, पृथ्वी के कीचड़ को साफ कर दिया तथा जल के गँदलेपन को दूर कर दिया जिस तरह कि भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति चारों आश्रमों के सदस्यों को उनकी अपनी अपनी व्याधियों से मुक्त कर देती है।

तात्पर्य : हर व्यक्ति को चार आश्रमों में से अपने आश्रम के अनुरूप नियत कर्तव्य करने चाहिए। ये आश्रम हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। ब्रह्मचारी को विद्यार्थी जीवन में अनेक निम्न कार्य करने होते हैं किन्तु ज्यों ज्यों वह कृष्ण की प्रेमाभक्ति में आगे बढ़ता जाता है उसके गुरुजन उसके आध्यात्मिक पद को मान्यता देते हुए उससे उच्चतर कर्तव्य करने को कहते हैं। गृहस्थ को पत्नी तथा सन्तान के लिए निरन्तर अनगणित कार्य करते रहने से ऊब जाना पड़ता है किन्तु ज्योंही वह कृष्ण की प्रेमाभक्ति में आगे बढ़ पड़ता है उसके भौतिक कार्य घटकर कम से कम होते जाते हैं।

वानप्रस्थ आश्रम में रहनेवाले लोगों को भी अनेक कार्य करने होते हैं जिनके स्थान पर कृष्ण की भावमयी प्रेमाभक्ति की जा सकती है। इसी तरह संन्यास आश्रम में भी अनेक प्राकृतिक कठिनाइयाँ हैं जिनमें से प्रमुख है परब्रह्म के निराकार पक्ष का ध्यान करने की प्रवृत्ति। *भगवद्गीता* (१२.५) में कहा गया है—*क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम्*—जिनके मन भगवान् के अव्यक्त निर्विशेष स्वरूप में आसक्त हैं उनके लिए प्रगति कर पाना अत्यधिक पीड़ाजनक होता है। किन्तु ज्योंही संन्यासी हर नगर तथा हर ग्राम में कृष्ण की महिमा का प्रचार करना शुरू कर देता है, तो उसका जीवन सुन्दर आध्यात्मिक साक्षात्कार की ओर अग्रसर होता हुआ आनन्दमय बन जाता है।

शरद ऋतु में आकाश पुनः प्राकृतिक नीला रंग धारण कर लेता है। बादलों का समाप्त हो जाना ब्रह्मचारी जीवन के कष्टप्रद कर्तव्यों के समाप्त होने जैसा है। चूँकि ग्रीष्म के तुरन्त बाद वर्षा ऋतु आती है इसलिए पशु कभी कभी मूसलाधार वर्षा से विचलित होकर पास-पास टुँस जाते हैं। किन्तु शरद ऋतु संकेत देती है कि वे अपने अपने क्षेत्रों में जाकर शान्तिपूर्वक रहें। यह गृहस्थ द्वारा पारिवारिक कर्तव्यों की उलझन से छूटकर अपने तथा अपने परिवार के असली लक्ष्य आध्यात्मिक उत्तरदायित्वों में अधिक समय लगाने के तुल्य है। पृथ्वी से कीचड़ हटने की तुलना वानप्रस्थ जीवन की असुविधाओं के हटाये जाने से की जा सकती है और जल का स्वच्छ होना, मैथुन-कामना के बिना, कृष्ण-महिमा के प्रचार द्वारा, संन्यास-जीवन के शुद्धीकरण के तुल्य है।

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ।

यथा त्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

सर्व-स्वम्—पास की हर वस्तु; जल-दाः—बादल; हित्वा—त्यागकर; विरेजुः—चमकने लगे; शुभ्र—शुद्ध; वर्चसः—अपना तेज; यथा—जिस प्रकार; त्यक्त-एषणाः—समस्त इच्छाओं का परित्याग करनेवाले; शान्ताः—शान्त; मुनयः—मुनिगण; मुक्त-किल्बिषाः—बुरी लालसाओं से मुक्त।

बादल अपना सर्वस्व त्यागकर शुद्ध तेज से उसी तरह चमकने लगे जिस तरह शान्त मुनिगण अपनी समस्त भौतिक इच्छाएँ त्यागने पर पापपूर्ण लालसाओं से मुक्त हो जाते हैं।

तात्पर्य : जब बादल जल से पूरित होते हैं, तो वे श्याम रंग के हो जाते हैं और सूर्य की किरणों को ढक लेते हैं जिस तरह अशुद्ध मनुष्य का भौतिक मन भीतर चमकनेवाली आत्मा को ढक लेता है। किन्तु जब बादल अपना जल बरसाकर सफेद पड़ जाते हैं तब वे चमकीली सूर्य की किरणों को प्रतिबिम्बित करते हैं जिस तरह कि भौतिक इच्छाओं तथा पापपूर्ण लालसाओं को त्याग देनेवाला व्यक्ति शुद्ध बन जाता है और तब वह अपनी आत्मा तथा अन्तस्थ परमात्मा को अच्छी तरह प्रतिबिम्बित करता है।

गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ।

यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

गिरयः—पर्वतों ने; मुमुचुः—मुक्त किया; तोयम्—अपना जल; क्वचित्—कभी कभी; न मुमुचुः—नहीं मुक्त किया; शिवम्—शुद्ध; यथा—जिस तरह; ज्ञान—दिव्य ज्ञान रूपी; अमृतम्—अमृत; काले—उपयुक्त समय पर; ज्ञानिनः—ज्ञानी लोग; ददते—प्रदान करते हैं; न वा—अथवा नहीं।

इस ऋतु में पर्वत कभी तो अपना शुद्ध जल मुक्त करते थे और कभी नहीं करते थे जिस तरह कि दिव्य विज्ञान में पटु लोग कभी तो दिव्य ज्ञान रूपी अमृत प्रदान करते हैं और कभी कभी नहीं करते।

तात्पर्य : इस अध्याय के प्रथम भाग में वर्षा ऋतु का वर्णन हुआ है और दूसरे भाग में वर्षा के बाद आनेवाली शरद ऋतु का। वर्षा ऋतु में पर्वतों से जल सदैव बहता रहता है किन्तु शरद ऋतु में कभी बहता है और कभी नहीं भी बहता। इसी तरह महान् सन्त उपदेशक कभी तो आध्यात्मिक ज्ञान के विषय में विस्तार से बतलाते हैं और कभी कभी मौन रहते हैं। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति परमात्मा के

निकट सम्पर्क में रहता है, अतः परमात्मा की इच्छानुसार पटु आध्यात्मिक विज्ञानी परिस्थिति-विशेष को देखते हुए परब्रह्म के विषय में बातें कर भी सकते हैं और नहीं भी कर सकते।

नैवाविदन्क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः ।

यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अविदन्—जान पाये; क्षीयमाणम्—कम होते हुए; जलम्—जल को; गाध-जले—छिछले जल में; चराः—गति करनेवाले; यथा—जिस तरह; आयुः—उनकी आयु; अनु-अहम्—प्रतिदिन; क्षय्यम्—घटती हुई; नराः—लोग; मूढाः—मूर्ख; कुटुम्बिनः—परिवार के सदस्यों के साथ रहते हुए।

अत्यन्त छिछले जल में तैरनेवाली मछलियाँ यह नहीं जान पाईं कि जल घट रहा है, जिस तरह कि परिवार के मूर्ख लोग यह नहीं देख पाते कि हर दिन के बीतने पर उनकी बाकी आयु किस तरह क्षीण होती जा रही है।

तात्पर्य : वर्षा ऋतु के बाद जल क्रमशः घटता जाता है किन्तु बेखबर मछलियाँ इसे नहीं समझ पातीं अतः वे झील तथा नदियों के तट पर प्रायः भटक जाती हैं। इसी तरह गृहस्थ जीवन में व्यस्त रहनेवाले लोग यह नहीं समझ पाते कि उनकी बाकी आयु निरन्तर घटती जा रही है। इस तरह वे अपनी कृष्णभक्ति पूरी नहीं कर पाते और जन्म-मृत्यु के चक्र में भटक जाते हैं।

गाधवारिचरास्तापमविन्दञ्छरदर्कजम् ।

यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

गाध-वारि-चराः—छिछले जल में घूमनेवाली; तापम्—कष्ट; अविन्दन्—अनुभव किया; शरत्-अर्क-जम्—शरद ऋतु के सूर्य के कारण; यथा—जिस तरह; दरिद्रः—निर्धन व्यक्ति; कृपणः—कंजूस; कुटुम्बी—पारिवारिक जीवन में मग्न; अविजित-इन्द्रियः—इन्द्रियों पर संयम न करनेवाला।

जिस प्रकार कंजूस तथा निर्धन कुटुम्बी अपनी इन्द्रियों को वश में न रखने के कारण कष्ट पाता है उसी तरह छिछले जल में तैरनेवाली मछलियों को शरदकालीन सूर्य का ताप सहना पड़ता है।

तात्पर्य : पिछले श्लोक के अनुसार यद्यपि बेखबर मछलियों को जल घटने का कोई पता नहीं चल पाता, किन्तु यह सोचा जा सकता है कि तब भी ये मछलियाँ सुखी होंगी क्योंकि कहावत है “अज्ञान वरदान होता है।” किन्तु अज्ञानी मछलियाँ भी शरदकालीन सूर्य के ताप से झुलसने लगती हैं।

इसी तरह भले ही कोई आसक्त कुटुम्बी आध्यात्मिक जीवन के प्रति अपने अज्ञान को वरदान माने किन्तु पारिवारिक जीवन की समस्याओं से वह सदैव विचलित होता रहता है और उसकी अनियंत्रित इन्द्रियाँ उसे दरअसल वेदना की स्थिति में डाल देती हैं।

शनैः शनैर्जहुः पङ्कं स्थलान्यामं च वीरुधः ।
यथाहंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

शनैः शनैः—धीरे धीरे; जहुः—त्याग दिया; पङ्कम्—अपना कीचड़; स्थलानि—स्थल के स्थानों ने; आमम्—कच्ची अवस्था में; च—तथा; वीरुधः—पौधे; यथा—जिस तरह; अहम्-ममताम्—अहंभाव तथा ममता को; धीराः—धीर मुनि; शरीर-आदिषु—भौतिक शरीर तथा अन्य बाह्य वस्तुओं पर केन्द्रित; अनात्मसु—आत्मा से सर्वथा पृथक्।

धीरे धीरे स्थल के विभिन्न भागों ने अपनी कीचड़-युक्त अवस्था त्याग दी और पौधे अपनी कच्ची अवस्था से आगे बढ़ गये। यह उसी तरह हुआ जिस तरह कि धीर मुनि अपना अहंभाव तथा ममता त्याग देते हैं। ये वास्तविक आत्मा—अर्थात् भौतिक शरीर तथा इसके उत्पादों से सर्वथा भिन्न वस्तुओं—पर आधृत होते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में आगत आदिषु शब्द शरीर के उप-उत्पादों—यथा सन्तान, घर तथा सम्पत्ति—का सूचक है।

निश्चलाम्बुरभूतूष्णीं समुद्रः शरदागमे ।
आत्मन्युपरते सम्यङ्मुनिर्व्युपरतागमः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

निश्चल—जड़; अम्बुः—जल; अभूत्—हो गया; तूष्णीम्—शान्त; समुद्रः—समुद्र; शरत्—शरद ऋतु के; आगमे—आगमन से; आत्मनि—जब आत्मा; उपरते—भौतिक कार्यों से विरक्त; सम्यक्—पूरी तरह; मुनिः—मुनि; व्युपरत—त्यागकर; आगमः—वैदिक मंत्रों का पाठ।

शरद ऋतु के आते ही समुद्र तथा सरोवर शान्त हो गये, उनका जल उस मुनि की तरह शान्त हो गया जो सारे भौतिक कार्यों से विरत हो गया हो और जिसने वैदिक मंत्रों का पाठ बन्द कर दिया हो।

तात्पर्य : मनुष्य भौतिक उन्नति, योगशक्ति तथा निर्विशेष मोक्ष के हेतु सामान्य वैदिक मंत्रों का पाठ करता है। किन्तु जब मुनि निजी इच्छाओं से पूर्णतया मुक्त होता है, तो वह एकमात्र परमेश्वर के दिव्य यश का उच्चारण करता है।

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन्कर्षका दृढसेतुभिः ।

यथा प्राणैः स्रवञ्जानं तन्निरोधेन योगिनः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

केदारेभ्यः—जलभरे धान के खेतों से; तु—तथा; अपः—जल; अगृह्णन्—ले लिया; कर्षकाः—कृषकों ने; दृढ—मजबूत; सेतुभिः—बाँधों से; यथा—जिस तरह; प्राणैः—इन्द्रियों से; स्रवत्—बहती हुई; ज्ञानम्—चेतना को; तत्—उन इन्द्रियों के; निरोधेन—संयम से; योगिनः—योगीगण ।

जिस तरह योग का अभ्यास करनेवाले अपनी चेतना को क्षुब्ध इन्द्रियों द्वारा बाहर निकलने से रोकने के लिए अपनी इन्द्रियों को कठोर नियंत्रण में रखते हैं उसी तरह किसानों ने अपने धान के खेतों से जल को बहकर बाहर न जाने देने के लिए मजबूत मेंड़ें उठा दीं ।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : “शरद में किसान अपने खेतों के भीतर का जल बचाने के लिए मजबूत मेंड़ें बना देते हैं जिससे खेतों के भीतर का पानी बाहर न जा सके। चूँकि अब नई वर्षा की कोई आशा नहीं रहती अतएव वे खेत में जो भी पानी रहता है उसे बचाना चाहते हैं। इसी तरह जो व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार में वास्तव में बढ़ा-चढ़ा होता है, वह अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित करके अपनी शक्ति की रक्षा करता है। यह सलाह दी जाती है कि पचास वर्ष की आयु होने पर मनुष्य पारिवारिक जीवन से विरक्त हो ले और अपनी शारीरिक शक्ति का उपयोग कृष्णभावनामृत की उन्नति हेतु करे। जब तक मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में करके उन्हें मुकुन्द की दिव्य प्रेमाभक्ति में नहीं लगाता तब तक मोक्ष की कोई सम्भावना नहीं रहती।”

शरदर्कांशुजांस्तापान्भूतानामुडुपोऽहरत् ।

देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो ब्रजयोषिताम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

शरत्—अर्क—शरदकालीन सूर्य की; अंशु—किरणों से; जान्—उत्पन्न; तापान्—कष्ट; भूतानाम्—सारे जीवों का; उडुपः—चन्द्रमा ने; अहरत्—हर लिया है; देह—शरीर के साथ; अभिमान-जम्—मिथ्या पहचान पर आधारित; बोधः—ज्ञान; मुकुन्दः—भगवान् कृष्ण ने; ब्रज-योषिताम्—वृन्दावन की स्त्रियों के ।

शरदकालीन चन्द्रमा ने सूर्य की किरणों से उत्पन्न कष्ट से सभी जीवों को छुटकारा दिला दिया जिस प्रकार कि मनुष्य का ज्ञान उसे अपने भौतिक शरीर से अपनी पहचान करने से उत्पन्न होनेवाले दुख से छुटकारा दिला देता है और जिस तरह भगवान् मुकुन्द वृन्दावन की स्त्रियों को उनके वियोग से उत्पन्न कष्ट से छुटकारा दिला देते हैं ।

खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ।

सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

खम्—आकाश; अशोभत—चमकने लगा; निर्मेघम्—बादलों से रहित; शरत्—शरद ऋतु में; विमल—स्वच्छ; तारकम्—तथा तारों से युक्त; सत्त्व-युक्तम्—सात्विक अच्छाई से प्रदत्त; यथा—जिस तरह; चित्तम्—चित्त को; शब्द-ब्रह्म—वैदिक शास्त्र का; अर्थ—तात्पर्य; दर्शनम्—प्रत्यक्ष अनुभव किया जानेवाला ।

बादलों से रहित तथा साफ दिखते तारों से भरा हुआ शरदकालीन आकाश उसी तरह चमकने लगा, जिस प्रकार वैदिक शास्त्रों के तात्पर्य का प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाले की आध्यात्मिक चेतना करती है ।

तात्पर्य : स्वच्छ तथा तारों से पूरित शरदकालीन आकाश की उपमा भक्त के शुद्ध हृदय से भी दी जा सकती है। आध्यात्मिक प्रकृति सदैव तेजोमय, स्वच्छ तथा आनन्दमय होती है और वैकुण्ठ कहलाने वाली यह आध्यात्मिक प्रकृति तुरन्त ही आत्मा की सारी इच्छाओं को तुष्ट कर देती है। कृष्णभावनामृत का यही रहस्य है ।

अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ।

यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

अखण्ड—अटूट; मण्डलः—गोला; व्योम्नि—आकाश में; रराज—चमकने लगा; उडु-गणैः—तारों के साथ; शशी—चन्द्रमा; यथा—जिस तरह; यदु-पतिः—यदुवंश के स्वामी; कृष्णः—कृष्ण; वृष्णि-चक्र—वृष्णियों के घेरे से; आवृतः—घिरे; भुवि—पृथ्वी पर ।

पूर्ण चन्द्रमा तारों से घिरकर आकाश में उसी तरह चमकने लगा, जिस तरह यदुवंश के स्वामी श्रीकृष्ण समस्त वृष्णियों से घिरकर पृथ्वी पर सुशोभित हो उठे ।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी बतलाते हैं कि वृन्दावन में सदैव पूर्ण चन्द्रमा उदित रहता है और यह पूर्ण चन्द्रमा परब्रह्म श्रीकृष्ण की पूर्ण अभिव्यक्ति के तुल्य है। जब भगवान् कृष्ण इस धरा पर प्रकट थे तो वे वृष्णि वंश के प्रमुख सदस्यों यथा नन्द, उपनन्द, वसुदेव तथा अक्रूर से घिरे हुए होते थे ।

आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ।

जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

आश्लिष्य—आलिंगन करके; सम—समान; शीत-उष्णम्—सर्द तथा गर्म के बीच; प्रसून-वन— पुष्पवन की; मारुतम्—वायु; जनाः—आम जनता; तापम्—कष्ट; जहुः—छोड़ सके; गोप्यः—गोपियाँ; न—नहीं; कृष्ण—कृष्ण द्वारा; हत—चुराये गये; चेतसः—हृदय वाली।

गोपियों के हृदय कृष्ण द्वारा हर लिये गये थे अतः उनके अतिरिक्त सारे लोग पुष्पों से लदे वन से आनेवाली वायु का आलिंगन करके अपने अपने कष्ट भूल गये। यह वायु न तो गर्म थी, न सर्द।

गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाभवन् ।
अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

गावः—गौवें; मृगाः—मृगियाँ; खगाः—चिड़ियाँ; नार्यः—स्त्रियाँ; पुष्पिण्यः—अपने अपने रजोकाल में; शरदा—शरद के कारण; अभवन्—हो गई; अन्वीयमानाः—पीछा की गई; स्व-वृषैः—अपने अपने संगियों द्वारा; फलैः—उत्तम परिणामों से; ईश-क्रियाः—भगवान् की सेवा में सम्पन्न कार्य; इव—सदृश।

शरद ऋतु के प्रभाव से सारी गौवें, मृगियाँ, स्त्रियाँ तथा चिड़ियाँ ऋतुमती हो गई और मैथुन सुख की खोज में उनके अपने-अपने जोड़े उनका पीछा करने लगे जिस प्रकार भगवान् की सेवा में किये गये कार्य स्वतः सभी प्रकार के लाभप्रद फल देते हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : “शरद ऋतु के आगमन पर सारी गौवें, मृगियाँ, चिड़ियाँ तथा सभी स्त्रियाँ गर्भिणी हो जाती हैं, क्योंकि इस ऋतु में सामान्यतः सबके पति कामेच्छा के वशीभूत हो जाते हैं। यह उसी तरह है जैसे कि भगवान् की कृपा से अध्यात्मवादियों को जीवन-लक्ष्य का वर प्रदान किया जाता है। श्रील रूप गोस्वामी ने उपदेशामृत में उपदेश दिया है कि मनुष्य को चाहिए कि अतीव उत्साह, धैर्य तथा संकल्प के साथ भक्ति करे, यम-नियमों का पालन करे, अपने को भौतिक कल्मष से दूर रखे और भक्तों की संगति करे। इन नियमों का पालन करने पर उसे भक्ति का वांछित फल अवश्य प्राप्त होगा। जो मनुष्य धैर्यपूर्वक भक्ति के यम-नियमों का पालन करता है, वह कालक्रम में फल पाता है, जिस तरह पत्नियाँ गर्भ धारण करके वांछित फल प्राप्त करती हैं।”

उदहृष्यन्वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना ।
राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून्विना नृप ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

उदहृष्यन्—प्रचुर मात्रा में फूल उठे; वारि-जानि—कमल; सूर्य—सूर्य; उत्थाने—उग आने पर; कुमुत्—कुमुदिनी, जो रात में फूलती है; विना—के अतिरिक्त; राज्ञा—राजा की उपस्थिति में; तु—निस्सन्देह; निर्भयाः—निडर; लोकाः—जनता; यथा—जिस तरह; दस्यून्—चोरों के; विना—अतिरिक्त; नृप—हे राजा ।

हे राजा परीक्षित, जब शरदकालीन सूर्य उदित हुआ तो रात में फूलनेवाली कुमुदिनी के अतिरिक्त सारे कमल के फूल प्रसन्नतापूर्वक खिल गये जिस तरह कि सशक्त शासक की उपस्थिति में चोरों के अतिरिक्त सारे लोग निर्भय रहते हैं ।

पुरग्रामेष्वग्रयणैरिन्द्रियैश्च महोत्सवैः ।

बभौ भूः पक्वशष्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

पुर—नगरों; ग्रामेषु—तथा ग्रामों में; आग्रयणैः—नवान्न ग्रहण करने के लिए वैदिक यज्ञ सम्पन्न करके; इन्द्रियैः—अन्य (सांसारिक) समारोहों द्वारा; च—तथा; महा-उत्सवैः—बड़े बड़े उत्सवों द्वारा; बभौ—सुशोभित हो उठी; भूः—पृथ्वी; पक्व—पका; शष्य—अन्न से; आढ्या—समृद्ध; कला—भगवान् की अंश रूप; आभ्याम्—उन दोनों (कृष्ण तथा बलराम) के साथ; नितराम्—अत्यधिक; हरेः—भगवान् का ।

सभी नगरों तथा ग्रामों में लोगों ने नई फसल के नवान्न का स्वागत और आस्वादन करने के लिए वैदिक अग्नि-यज्ञ करके तथा स्थानीय प्रथा एवं परम्परा का अनुसरण करते हुए अन्य ऐसे ही समारोहों सहित बड़े-बड़े उत्सव मनाए। इस तरह नवान्न से समृद्ध एवं कृष्ण तथा बलराम की उपस्थिति के कारण विशेषतया सुन्दर दिखने वाली पृथ्वी भगवान् के अंश रूप में सुशोभित हो उठी ।

तात्पर्य : अग्रयणै शब्द विशेष प्रामाणिक वैदिक यज्ञ का द्योतक है और इन्द्रियै शब्द लोकोत्सवों का सूचक है, जिनके सांसारिक ध्येय होते हैं ।

श्रील प्रभुपाद की टीका इस प्रकार है : “शरद ऋतु में खेत पके अन्न से पूर्ण हो जाते हैं। उस समय लोग फसल को देखकर प्रमुदित हो जाते हैं और अनेक उत्सव मनाते हैं यथा नवान्न जिसमें भगवान् को नये अन्न की भेंट दी जाती है। नवान्न सर्वप्रथम विभिन्न मन्दिरों के अर्चाविग्रहों को भेंट चढ़ाया जाता है और सभी लोगों को बुलाकर इन नवान्नों से बनाई गई खीर खिलाई जाती है। और भी पूजा की विधियाँ और धार्मिक उत्सव हैं, विशेषतया बंगाल में जहाँ सबसे बड़ा उत्सव दुर्गा-पूजा के नाम से मनाया जाता है।”

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान्प्रपेदिरे ।

वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान्काल आगते ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

वणिक्—व्यापारीगण; मुनि—विरक्त साधुगण; नृप—राजा; स्नाताः—तथा ब्राह्मण विद्यार्थी; निर्गम्य—बाहर जाकर; अर्थान्—अपनी इच्छित वस्तुएँ; प्रपेदिरे—प्राप्त किया; वर्ष—वर्षा द्वारा; रुद्धाः—अवरुद्ध; यथा—जिस तरह; सिद्धाः—सिद्धपुरुष; स्व-पिण्डान्—इच्छित स्वरूपों को; काले—समय के; आगते—आने पर।

व्यापारी, मुनिजन, राजा तथा ब्रह्मचारी विद्यार्थी, जो वर्षा के कारण जहाँ तहाँ अटके पड़े थे अब बाहर जाने और अपने अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र थे जिस तरह इसी जीवन में सिद्धि प्राप्त व्यक्ति उपयुक्त समय आने पर भौतिक शरीर त्यागकर अपने अपने स्वरूप प्राप्त करते हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : “वृन्दावन में भगवान् कृष्ण तथा बलराम की उपस्थिति के कारण शरद ऋतु अत्यन्त शोभामयी थी। व्यापारी, राजा तथा बड़े बड़े ऋषि-मुनि इच्छित फल प्राप्त करने के लिए बाहर जाने के लिए स्वतंत्र थे। इसी तरह अध्यात्मवादियों ने भी इस देहरूपी बन्धन से मुक्त हो जाने पर अभीष्ट प्राप्त किया। वर्षा ऋतु में व्यापारी वर्ग एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा नहीं कर सकता अतः उसे वांछित लाभ की प्राप्ति नहीं हो पाती। न ही राजन्य वर्ग एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करके जनता से कर वसूल कर सकता है। यहाँ तक कि साधुगण भी, जिन्हें दिव्य ज्ञान के प्रचार हेतु यात्रा करनी होती है, वर्षा ऋतु के कारण रुके रहते हैं। किन्तु शरद ऋतु में ये सभी अपने अपने आवास छोड़ देते हैं। अध्यात्मवादी चाहे वह ज्ञानी हो, या योगी अथवा भक्त, भौतिक शरीर होने से आध्यात्मिक लाभ का वास्तव में भोग नहीं कर पाता। किन्तु ज्योंही वह शरीर त्याग देता है अर्थात् मरणोपरान्त ज्ञानी ब्रह्मतेज में लीन हो जाता है, योगी उच्च लोकों में चला जाता है और भक्त भगवान् के निजधाम गोलोक वृन्दावन या वैकुण्ठ चला जाता है और इस तरह नित्य आध्यात्मिक जीवन का भोग करता है।”

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “वृन्दावन में वर्षा तथा शरद ऋतुएँ” नामक बीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।